नईदुनिया

संपादकीय

लाचारी या मिलीभगतः बेतवा में डूबी प्रशासन की साख

अशोकनगर जिले में बेतवा नदी के मल्हारगढ़ घाट पर हुई घटना ने प्रशासनिक व्यवस्था की पोल खोल दी है। रेत माफिया के हौसले इतने बुलंद हैं कि दिनदहाड़े नदी का सीना छलनी किया जा रहा है और जिम्मेदार विभाग मूकदर्शक बने हैं। नगरपालिका अध्यक्ष और पूर्व सांसद केपी यादव जब मुंगावली जा रहे थे, तभी ओवरलोड रेत से भरे डंपर ने उनकी गाड़ी को टक्कर मार दी। संदीप धाम पर गाड़ी रुकवाकर पूछताछ की गई तो चालकों ने अवैध रेत परिवहन की बात स्वीकार की। इसके बाद यादव मल्हारगढ़ घाट पहुंचे, जहां नदी के बीच पांच पनडुब्बी मशीनों से बड़े पैमाने पर अवैध उत्खनन हो रहा था। उन्होंने कलेक्टर, एसपी और खनिज विभाग के वरिष्ठ अधिकारियों को सूचना दी, लेकिन उनके आरोप के मुताबिक, घटनास्थल से महज 30 मिनट की दूरी पर मौजूद प्रशासनिक अमला चार घंटे तक नहीं पहुंचा। यह लाचारी है या माफिया के साथ मिलीभगत?

मामले में सबसे गंभीर सवाल कार्रवाई को लेकर है। मौके पर अवैध उत्खनन में प्रयुक्त मशीनें और डंपर जब्त हुए, मजदूर भी पकड़े गए, फिर भी मामला अज्ञात आरोपितों के खिलाफ दर्ज किया गया। जब मशीनें और वाहन मौके पर मिले, तो उनके मालिकों की पहचान करना इतना मुश्किल क्यों है? मजदूर किसके लिए काम कर रहे थे और उत्खनन का संचालन कौन कर रहा था, इसकी जांच क्यों नहीं हुई? खनिज विभाग का यह तर्क कि यहां नया रास्ता बना था, जिम्मेदारी से बचने का प्रयास लगता है। नदी के बीच पांच मशीनों से उत्खनन बिना किसी तैयारी और संसाधन के संभव नहीं है। इतने बड़े स्तर पर अवैध कारोबार चलने के बावजूद अधिकारियों को इसकी भनक नहीं लगना अपने आप में गंभीर सवाल है।

खनिज विभाग की जिम्मेदारी अवैध उत्खनन रोकना है, लेकिन यहां उसकी निगरानी पर ही सवाल उठ रहे हैं। यदि यह गतिविधि प्रशासन की जानकारी के बिना चल रही थी, तो नियमित निरीक्षण का क्या औचित्य है? यदि जानकारी थी, तो कार्रवाई क्यों नहीं हुई? शहर से रोजाना गुजरने वाले सौ से अधिक डंपरों पर जिम्मेदार विभागों की नजर क्यों नहीं पड़ी? यदि घाट तक पहुंचने के लिए नया रास्ता बनाया गया था, तो सूचना मिलने के बाद उसे तत्काल बंद क्यों नहीं किया गया? इन सवालों के जवाब प्रशासन को देने होंगे।

पूर्व सांसद को चार घंटे इंतजार करना पड़ा, तो आम नागरिक की स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। पुलिस गश्त और प्रशासनिक निगरानी की प्रभावशीलता पर भी सवाल उठना स्वाभाविक है। जब अवैध उत्खनन खुलेआम हो रहा हो, तब पुलिस और खनिज विभाग की सक्रियता कहां गायब हो जाती है? क्या जिम्मेदार अधिकारी अपने कर्तव्य निभाने में असफल रहे या किसी दबाव में कार्रवाई से बचते रहे?

अब केवल अज्ञात आरोपितों के खिलाफ मामला दर्ज कर खानापूर्ति नहीं होनी चाहिए। जब्त मशीनों और डंपरों के मालिकों की पहचान कर दोषियों पर कठोर कार्रवाई की जाए। खनिज विभाग की भूमिका की निष्पक्ष जांच हो और मौके पर पहुंचने में देरी करने वाले अधिकारियों की जवाबदेही तय की जाए। यह केवल रेत चोरी नहीं, बल्कि पर्यावरण और सरकारी राजस्व को नुकसान पहुंचाने का मामला है। यदि प्रशासन ने अब भी कठोर कदम नहीं उठाए, तो वह दिन दूर नहीं जब बेतवा का अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा।

आजकल

फिर जलने लगा मणिपुरः नफरत से नहीं, बातचीत से निकलेगा हल

मणिपुर एक बार फिर हिंसा की आग में झुलस रहा है। इंफाल में मैतई संगठनों की रैली और नोने जिले में सशस्त्र झड़प ने साबित कर दिया है कि 2023 में शुरू हुआ घाव अब तक नहीं भरा है। तीन मैतई युवकों की हत्या के बाद घाटी में आक्रोश और पहाड़ों में अविश्वास बढ़ा है। करीब चार घंटे चली गोलीबारी में तीन लोगों की मौत बताती है कि बफर जोन के भरोसे शांति कायम नहीं रह सकती। स्थायी समाधान के लिए केंद्र और राज्य सरकार को मिलकर प्रयास करने होंगे।

मैतई और कुकी समुदायों के बीच संघर्ष की जड़ जमीन, पहचान और असुरक्षा की भावना है। मैतई घाटी में रहते हैं, जो प्रदेश का लगभग दस प्रतिशत हिस्सा है, जबकि कुकी और नगा समुदाय मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्रों में रहते हैं। मैतई समुदाय अनुसूचित जनजाति का दर्जा चाहता है, जबकि कुकी समुदाय को आशंका है कि इससे उसकी जमीन और रोजगार के अवसर प्रभावित होंगे। इसी अविश्वास ने 2023 में हिंसा को जन्म दिया। आज भी हजारों लोग राहत शिविरों में रहने को मजबूर हैं और बच्चों की पढ़ाई प्रभावित हो रही है।

अब नगा संगठनों की सक्रियता से संघर्ष के त्रिकोणीय होने की आशंका बढ़ी है। केंद्र सरकार को तीनों समुदायों के प्रतिनिधियों, महिलाओं, युवाओं और बुद्धिजीवियों की संयुक्त शांति परिषद बनानी चाहिए। नियमित बातचीत और निष्पक्ष मध्यस्थता से ही अविश्वास कम हो सकता है। जमीन और पहचान से जुड़े विवादों पर स्पष्ट कानूनी निर्णय, अवैध हथियारों की बरामदगी और हिंसा में शामिल लोगों के विरुद्ध निष्पक्ष कार्रवाई जरूरी है।

राहत शिविरों में बच्चों की शिक्षा और महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने के साथ रोजगार, सड़क, इंटरनेट और कृषि आधारित उद्योगों के माध्यम से विकास को गति देनी होगी। मणिपुर भारत की सांस्कृतिक विविधता का महत्वपूर्ण हिस्सा है। मैतई, कुकी और नगा, तीनों समुदायों का भविष्य इसी धरती से जुड़ा है। आरोप-प्रत्यारोप छोड़कर संवाद का रास्ता अपनाना होगा। स्थायी शांति नफरत से नहीं, विश्वास, न्याय और बातचीत से ही आएगी।

जनभागीदारी से स्वच्छताः नवाचार से मध्यप्रदेश ने बनाई नई पहचान



मध्यप्रदेश में स्वच्छता की कहानी अब सड़कों की सफाई से आगे बढ़कर कचरे के वैज्ञानिक प्रबंधन, पुनः उपयोग और पर्यावरण के अनुकूल परियोजनाओं तक पहुंच गई है। इसी का परिणाम है कि इंदौर लगातार सात बार देश का सबसे स्वच्छ शहर बना। वहीं, प्रदेश को भी स्वच्छ सर्वेक्षण में कई बार सम्मान मिला। इंदौर की सफलता के पीछे कचरे का पृथक्करण, उससे खाद और बायोगैस बनाने तथा जनभागीदारी की अहम भूमिका रही है। इंदौर सुपर स्वच्छ लीग में शामिल हुआ, जबकि भोपाल बड़े शहरों की श्रेणी में दूसरे स्थान पर रहा। जबलपुर को सफाई मित्र सुरक्षित शहर के लिए राष्ट्रीय सम्मान मिला और उज्जैन ने भी सुपर स्वच्छ लीग में स्थान बनाया।

स्वच्छ सर्वेक्षण 2024-25 में स्वच्छता की राह में चुनौतियां भी सामने आई हैं। प्रदेश में स्वच्छ भारत मिशन शहरी 2.0 के तहत 3,680 करोड़ रुपये की परियोजनाओं को मंजूरी दी गई। स्वच्छता का स्तर बढ़ाने के लिए घरों से गीले और सूखे कचरे को अलग-अलग एकत्र करना और आगे भी उनका पृथक्करण बनाए रखना नगरीय निकायों के लिए बड़ी चुनौती है। कचरे के प्रसंस्करण और निस्तारण की धीमी गति तथा गंदे पानी को बिना उपचार जलस्रोतों में मिलने से रोकना भी गंभीर समस्याएं हैं। आर्थिक संसाधनों की कमी से जूझ रहे नगरीय निकायों के सामने जिम्मेदारी बड़ी है।

उज्जैन में सिंहस्थ 2028 को शून्य कचरा यानी जीरो वेस्ट आयोजन बनाने की तैयारी है। इसके लिए व्यापक ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और स्वच्छता योजना तैयार करने के लिए निविदा जारी की गई है। प्रदेश के 109 नगरीय निकायों में चिह्नित 57 लाख टन पुराने कचरे में से 48 लाख टन से अधिक का प्रसंस्करण किया जा चुका है। इससे 509 एकड़ जमीन पुनः उपयोग के लिए उपलब्ध हुई है। इंदौर और ग्वालियर में संपीड़ित बायोगैस संयंत्र संचालित हैं, जबकि देवास, रतलाम, मुरैना, बुरहानपुर और खंडवा में पांच और संयंत्र स्थापित किए जा रहे हैं। इनका उद्देश्य जैविक कचरे को उपयोगी ईंधन में बदलना है। नगरीय निकायों से निकलने वाले अपशिष्ट जल के उपचार के लिए लगभग 350 परियोजनाएं क्रियान्वित की जा रही हैं। भविष्य में शहरों में उपचारित पानी की अलग पाइपलाइन बिछाने की भी योजना है।

स्वच्छता की कहानी केवल इंदौर तक सीमित नहीं है। भोपाल की अपनी ऐतिहासिक पहचान और विकास यात्रा रही है। आजादी के बाद भोपाल एक अलग रियासत था। नवाब हमीदुल्लाह खान इसे स्वतंत्र बनाए रखना चाहते थे, लेकिन बाद में उन्होंने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। जून 1949 में केंद्र सरकार ने भोपाल का प्रशासन संभाला। बाद में भोपाल पार्ट सी राज्य बना और फिर मध्यप्रदेश की राजधानी बना। इंदौर और भोपाल में जनभागीदारी के प्रयासों ने स्वच्छता को नई दिशा दी है। भोपाल के भानपुर में कभी कचरे का पहाड़ हुआ करता था, लेकिन आज वहां पार्क दिखाई देते हैं। यह बदलाव वर्षों की मेहनत और नागरिकों के सहयोग का परिणाम है।

स्वच्छता का स्तर बढ़ाने के लिए जनभागीदारी सबसे बड़ा मंत्र है। इंदौर ने यही किया। वहां लोगों ने गीला और सूखा कचरा अलग देने की आदत अपनाई, दुकानदारों ने प्लास्टिक के उपयोग को कम करने में सहयोग दिया और स्कूलों ने बच्चों को स्वच्छता का पाठ पढ़ाया। यही कारण है कि वहां सफाई केवल नगर निगम का काम नहीं, बल्कि नागरिकों की आदत बन गई है। मध्यप्रदेश के अन्य शहरों में भी इस मॉडल को अपनाना होगा। जब तक नागरिक स्वयं आगे नहीं आएंगे, तब तक कोई मशीन या योजना शहरों को पूरी तरह स्वच्छ नहीं बना सकती।

उज्जैन में सिंहस्थ 2028 को जीरो वेस्ट बनाने का लक्ष्य एक बड़ी पहल है। लाखों लोगों की उपस्थिति के बावजूद कचरे का प्रभावी प्रबंधन पूरे देश के लिए मिसाल बन सकता है। इसी तरह उपचारित पानी का उपयोग बगीचों और उद्योगों में करने से नर्मदा और अन्य नदियों पर दबाव कम होगा। पुराने कचरे के प्रसंस्करण से उपलब्ध हुई जमीन का उपयोग भी विकास के नए अवसर पैदा कर सकता है।

मध्यप्रदेश की स्वच्छता यात्रा बताती है कि स्वच्छता केवल झाड़ू लगाने का नाम नहीं, बल्कि सोच बदलने का प्रयास है। इसकी शुरुआत घर में कचरे को अलग करने से होती है और इसका असर पूरे प्रदेश की तस्वीर बदल सकता है। इंदौर ने रास्ता दिखाया है। अब भोपाल, जबलपुर, उज्जैन और छोटे नगरीय निकायों को भी इस दिशा में आगे बढ़ना होगा। जनभागीदारी और नवाचार साथ चलेंगे, तभी मध्यप्रदेश देश के सबसे स्वच्छ राज्यों में अपनी पहचान मजबूत कर सकेगा। स्वच्छता अंततः स्वास्थ्य, समृद्धि और सम्मान का आधार है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

पत्रकारिता की रीढ़ है भरोसा स्रोत बचा तो लोकतंत्र बचेगा



हर बड़ी खबर के पीछे एक चेहरा होता है, जो कभी सामने नहीं आता। वह सरकारी फाइल से एक पन्ना निकालकर देता है, कंपनी के अंदर की गड़बड़ी की जानकारी देता है या अस्पताल के घोटाले का सच बताता है। वह जानता है कि सच बताने पर उसकी नौकरी जा सकती है और उसका परिवार खतरे में पड़ सकता है। इसलिए वह पत्रकार से एक ही वादा मांगता है कि उसका नाम कभी उजागर न हो। यही वादा पत्रकारिता की बुनियाद है। यदि यह वादा टूट गया, तो खबरों के स्रोत सूख जाएंगे और खोजी पत्रकारिता केवल प्रेस विज्ञप्तियों की नकल बनकर रह जाएगी।

मीडियाकर्मी का नैतिक दायित्व है कि वह खोजपूर्ण खबर में सहयोग करने वाले स्रोत की सुरक्षा और उसके विश्वास को कायम रखे। गोपनीय स्रोत की पहचान सुरक्षित रखने का वादा महज पेशेवर शिष्टाचार नहीं, बल्कि खोजी पत्रकारिता की बुनियाद है। यदि जनहित में महत्वपूर्ण गोपनीय सूचनाएं देने वालों का भरोसा टूटेगा, तो भ्रष्टाचार और जनविरोधी गतिविधियों का खुलासा करने वाले लोग आगे आने से कतराएंगे। व्हिसलब्लोअर गंभीर अनियमितताओं पर चुप्पी साध सकते हैं। इससे जनता जरूरी जानकारी से वंचित रह जाएगी।

इस विषय की गंभीरता के चलते ही देश के सर्वोच्च न्यायालय में डिजिटल व्यक्तिगत डेटा संरक्षण अधिनियम (डीपीडीपी) को चुनौती दी गई है। डिजिटल न्यूज पब्लिशर्स एसोसिएशन ने आशंका जताई है कि इस कानून के प्रावधान पत्रकारों के गोपनीय स्रोतों की पहचान उजागर कर सकते हैं, जिससे स्वतंत्र समाचार संकलन और खोजी पत्रकारिता प्रभावित हो सकती है। चिंता यह भी है कि सरकार को नागरिकों की निजी जानकारी एकत्र करने वाली संस्थाओं से सूचना प्राप्त करने के अधिकार मिलने से स्रोतों की पहचान उजागर होने का खतरा बढ़ सकता है। इस मामले में याचिका पर सुनवाई के बाद सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र सरकार से जवाब मांगा है। अगली सुनवाई 17 नवंबर को निर्धारित की गई है।

इसमें दो राय नहीं कि तेजी से डिजिटल होती दुनिया में निजता की सुरक्षा बेहद जरूरी है। नागरिकों की निजी जानकारी का दुरुपयोग रोकना आवश्यक है, लेकिन निजता की रक्षा के लिए बनाया गया कानून सत्ताधीशों के लिए तथ्यों की खोज और जांच-पड़ताल में बाधा बनने का माध्यम नहीं होना चाहिए। शासन-प्रशासन में भ्रष्टाचार, सत्ता के दुरुपयोग और कॉरपोरेट जगत की गड़बड़ियों का खुलासा अक्सर ऐसे लोग करते हैं, जो जोखिम उठाकर वास्तविक तथ्य सामने लाते हैं। पर्याप्त सुरक्षा के बिना उनकी पहचान उजागर होने से पत्रकारिता की विश्वसनीयता प्रभावित हो सकती है।

सोचिए, यदि यह संदेश फैल गया कि कानून के जरिये पत्रकारों के स्रोतों की पहचान उजागर की जा सकती है, तो क्या होगा? घोटाले का पता लगाने वाला सरकारी कर्मचारी चुप हो जाएगा, नकली दवाओं का सच जानने वाला डॉक्टर खामोश रह जाएगा और पुल निर्माण में घटिया सामग्री का इस्तेमाल देखने वाला इंजीनियर सामने आने से बचेगा। ऐसी चुप्पी भ्रष्टाचार को ताकत देगी। यह केवल पत्रकारों का नुकसान नहीं, बल्कि हर नागरिक के जानने के अधिकार का नुकसान है।

डिजिटल युग में स्रोतों की सुरक्षा और कठिन हो गई है। पहले सूचना देने वाला दस्तावेज लेकर आता था, आज वह पेन ड्राइव या ईमेल से जानकारी भेजता है। डिजिटल गतिविधियों के मेटाडेटा से यह पता लगाया जा सकता है कि किसने किससे संपर्क किया और किसने किसे फाइल भेजी। यदि टेलीकॉम या इंटरनेट कंपनियों से डेटा प्राप्त करने के अधिकारों पर पर्याप्त न्यायिक निगरानी नहीं होगी, तो स्रोतों की पहचान उजागर होने का खतरा बढ़ सकता है।

दुनिया के कई लोकतांत्रिक देशों में पत्रकारों के स्रोतों की सुरक्षा को कानूनी मान्यता मिली है। अमेरिका के कई राज्यों में शील्ड कानून पत्रकारों को स्रोत बताने से संरक्षण देते हैं। यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय ने भी प्रेस की स्वतंत्रता के लिए स्रोतों की सुरक्षा के महत्व को रेखांकित किया है। भारत में भी प्रेस की स्वतंत्रता अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसलिए देश को ऐसा संतुलित कानूनी ढांचा विकसित करना चाहिए, जो निजता और पत्रकारिता, दोनों की रक्षा करे।

स्रोतों की सुरक्षा का अर्थ पत्रकारों को जवाबदेही से मुक्त करना नहीं है। यदि कोई पत्रकार जानबूझकर झूठी खबर फैलाने के लिए स्रोत की आड़ लेता है, तो उसकी जांच होनी चाहिए। लेकिन जांच की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए कि ईमानदार स्रोतों का भरोसा न टूटे। स्रोतों की पहचान से जुड़ा डेटा मांगने के लिए स्वतंत्र न्यायिक अनुमति आवश्यक होनी चाहिए। ऐसी मांग का दायरा सीमित और स्पष्ट हो तथा पत्रकारों को उसे चुनौती देने का अधिकार मिले। कानून में जनहित की खोजी पत्रकारिता के लिए स्रोतों की सुरक्षा के स्पष्ट प्रावधान होने चाहिए।

पत्रकार और स्रोत के बीच भरोसा एक धागे जैसा है, जो बड़ी मुश्किल से बनता है और एक झटके में टूट सकता है। यह भरोसा बचा रहा, तो घोटाले उजागर होंगे, गलत काम रुकेंगे और लोकतंत्र मजबूत होगा। यदि यह टूट गया, तो खबरें केवल सत्ता की विज्ञप्तियां बनकर रह जाएंगी। पत्रकारिता की बुनियाद स्रोतों की सुरक्षा है और इस बुनियाद को बचाना ही लोकतंत्र को बचाना है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

डिजिटल डकैती का मनोविज्ञान

जब लुटेरा बिना हथियार घर में घुस जाता है



लूट का नया नाम अब साइबर अपराध नहीं, डिजिटल डकैती कहिए। सुप्रीम कोर्ट ने हाल ही में एक मामले में जो टिप्पणी की, वह केवल अदालती टिप्पणी नहीं, बल्कि पूरे देश के लिए एक नई परिभाषा है। कोर्ट ने साइबर अपराध को डिजिटल डकैती कहने की बात कही। यह शब्द बहुत सोच-समझकर चुना गया है। पहले हम कहते थे कि ऑनलाइन ठगी हो गई या धोखाधड़ी हो गई, लेकिन ठगी शब्द में एक हल्कापन है। डकैती शब्द में डर और हिंसा का भाव है, और यही आज की सच्चाई है। अपराधी अब घर का ताला तोड़कर नहीं आता, बल्कि फोन पर वीडियो कॉल में पुलिस की वर्दी पहनकर सामने आता है और व्यक्ति को उसके ही घर में नजरबंद कर देता है। इसलिए इसे डकैती कहना ज्यादा सटीक है, क्योंकि इसमें हथियार की जगह मनोवैज्ञानिक दबाव का इस्तेमाल होता है।

डिजिटल अरेस्ट के नाम पर डर का कारोबार चल रहा है। डिजिटल अरेस्ट नाम का कोई कानूनी प्रावधान नहीं है, लेकिन इसका खौफ अपराधियों का सबसे बड़ा हथियार बन गया है। एक बुजुर्ग व्यक्ति घर में अकेला बैठा है। फोन आता है कि उसका आधार कार्ड मादक पदार्थों की तस्करी में पकड़ा गया है या उसके नाम पर मनी लॉन्ड्रिंग हुई है। फिर खुद को सीबीआई या नारकोटिक्स अधिकारी बताने वाला व्यक्ति वर्दी में वीडियो कॉल करता है और कहता है कि उसे गिरफ्तार कर लिया गया है। वह बाहर नहीं जा सकता और उसका बैंक खाता सीज होने वाला है। बदनामी के डर से व्यक्ति टूट जाता है और अपनी जीवनभर की कमाई अनजान खाते में भेज देता है। यह लूट है, लेकिन इसमें चाकू नहीं दिखता।

इस अपराध का दूसरा पहलू म्यूल खाते हैं। कई युवा सोचते हैं कि किसी के कहने पर अपने खाते में पैसा मंगवाने और दस प्रतिशत कमीशन लेने में क्या बुराई है। यही सोच उन्हें अपराध के जाल में फंसा देती है। ठगी का पैसा पहले ऐसे खातों में आता है और फिर कई खातों में बांट दिया जाता है। पुलिस जांच करती है तो सबसे पहले खाताधारक तक पहुंचती है। अनजान होने का बहाना उसे जिम्मेदारी से मुक्त नहीं कर देता। अपना बैंक खाता इस तरह इस्तेमाल होने देना संगठित अपराध का हिस्सा बन सकता है। इस मामले में 12 राज्यों में 30 से अधिक शिकायतें हैं। आरोपितों ने सभी मामलों की सुनवाई एक जगह करने की मांग की, लेकिन सुप्रीम कोर्ट ने इसे स्वीकार नहीं किया। अलग-अलग राज्यों में जांच जारी रहने से पूरे नेटवर्क की परतें खुल सकती हैं। इससे यह पता लगाने में मदद मिलेगी कि किसने खाता उपलब्ध कराया, किसने फोन किया और किसने पैसा निकाला। यह पीड़ितों के हितों को प्राथमिकता देने वाली न्याय व्यवस्था का महत्वपूर्ण पहलू है।

बुजुर्ग साइबर अपराधियों के आसान निशाने बनते हैं, क्योंकि वे अक्सर अकेले रहते हैं और पुलिस के नाम से घबरा जाते हैं। यह केवल आर्थिक अपराध नहीं, बल्कि भावनात्मक अपराध भी है, जो लोगों का भरोसा तोड़ता है। इसलिए परिवारों को बुजुर्गों को जागरूक करना होगा। उन्हें समझाना होगा कि कोई भी असली पुलिस अधिकारी वीडियो कॉल पर गिरफ्तारी का भय दिखाकर पैसे नहीं मांगता। अपना बैंक खाता किराये पर देना भी गंभीर मुसीबत में डाल सकता है। डिजिटल इंडिया का अर्थ केवल इंटरनेट पहुंचाना नहीं, बल्कि डिजिटल विवेक विकसित करना भी है। बैंकों को संदिग्ध लेनदेन की पहचान के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता का इस्तेमाल करना चाहिए। दूरसंचार कंपनियों को फर्जी सिम और स्पूफ कॉल रोकने के प्रयास तेज करने चाहिए। हर थाने में साइबर सहायता व्यवस्था होनी चाहिए, जहां लोग बिना डरे अपनी शिकायत बता सकें।

डिजिटल डकैती का सबसे बड़ा हथियार डर है और इसका सबसे बड़ा इलाज जागरूकता। जब भी किसी अनजान कॉल पर गिरफ्तारी या पैसे को लेकर धमकी मिले, तो घबराने के बजाय रुककर सोचें, फोन काटें और परिवार से बात करें। याद रखिए, डिजिटल दुनिया में अपराधी आपके डर का फायदा उठाता है। डर पर नियंत्रण और जागरूकता ही इस डकैती से बचाव का सबसे प्रभावी रास्ता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

एक ही परिसर में शाला और मधुशाला, जबलपुर मॉडल की जय हो!



जबलपुर के संजीवनी नगर में जो प्रयोग हुआ है, वह देश की शिक्षा व्यवस्था में मील का पत्थर है। एक ही इमारत में एक तरफ संस्कार भारती नाम का स्कूल और दूसरी तरफ संस्कार उतारती शराब की दुकान चल रही है। हाईकोर्ट ने पूछा है कि जबलपुर में एक ही इमारत में शाला और मधुशाला कैसे चल रही हैं? सवाल तो अदालत पूछ रही है, लेकिन हमें तो इसमें सरकार की दूरदर्शिता दिखाई देती है। सरकार ने तय किया है कि समय की बर्बादी नहीं होनी चाहिए। बच्चा सुबह पहाड़ा पढ़े और शाम को उसके पिता उसी परिसर में पैग लगाएं। यह है समय प्रबंधन का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण। बच्चा बोले, ए फॉर एप्पल या ए फॉर अल्कोहल?

इस पूरे मामले में सबसे बड़ी बात सरकारी विभागों का अद्भुत तालमेल है। आबकारी विभाग कहता है कि हमने लाइसेंस दिया है, तो क्या हुआ? शिक्षा विभाग कहता है कि हमने मान्यता दी है, तो क्या हुआ? कलेक्टर कार्यालय कहता है कि शिकायत आई, तो क्या हुआ? नगर निगम कहता है कि नक्शा पास है, तो क्या हुआ? सभी विभाग अपनी-अपनी आंखें बंद किए बैठे हैं और इसी को कहते हैं सुशासन का टीमवर्क। किसी ने नहीं सोचा कि शराब की दुकान और स्कूल एक साथ कैसे चल सकते हैं, क्योंकि सोचने के लिए समय चाहिए और समय फाइलें दबाने में लगा है। एक नागरिक अजय पटेल ने कलेक्टर और आबकारी अधिकारियों से शिकायत की, लेकिन सुनवाई नहीं हुई। आखिरकार हाईकोर्ट जाना पड़ा। आम आदमी को न्याय के लिए अदालत जाना पड़े और सरकारी अधिकारी अपनी कुर्सियों पर बैठकर चाय पीते रहें, यही तो व्यवस्था है!

सरकार की नीति कहती है कि स्कूल, मंदिर और अस्पताल के पास शराब की दुकान नहीं होनी चाहिए, लेकिन नीति में यह नहीं लिखा कि एक ही इमारत में दुकान नहीं हो सकती। लिहाजा, बाबुओं ने इस छेद का पूरा फायदा उठा लिया।

इमारत के दो हिस्से कर दिए, एक में स्कूल और दूसरे में दुकान। फिर कह दिया कि देखिए, दूरी तो है ही, कम से कम एक दीवार की दूरी! यह कैसा तर्क है? जैसे कोई कहे कि शेर और बकरी एक ही पिंजरे में हैं, लेकिन बीच में रस्सी बंधी है, इसलिए दोनों सुरक्षित हैं। नीति बनाने वाले बड़े साहब वातानुकूलित कमरों में बैठकर नियम बनाते हैं और उन्हें लागू करने वाले छोटे साहब उन्हीं नियमों में से रास्ता निकाल लेते हैं।

सोचिए, उस स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों पर इसका क्या असर पड़ता होगा। सुबह प्रार्थना में बच्चा कहता है, 'हमको मन की शक्ति देना' और दोपहर में देखता है कि बाहर लोग मन की शांति के लिए बोतल खोल रहे हैं। शिक्षक ब्लैकबोर्ड पर लिखता है कि शराब हानिकारक है और खिड़की से दिखता है कि उसी परिसर में शराब बिक रही है। बच्चा उलझन में पड़ जाएगा कि किताब सही है या खिड़की से दिखाई देने वाला दृश्य। लेकिन यही तो नई व्यावहारिक शिक्षा है, किताबी ज्ञान एक तरफ और जीवन का सच दूसरी तरफ!

सबसे बड़ा व्यंग्य यह है कि जनहित याचिका दायर करने वाले व्यक्ति को ही संघर्ष करना पड़ा। पहले कलेक्टर के पास जाओ, फिर आबकारी विभाग के पास और जब कोई न सुने, तो हाईकोर्ट जाओ। मध्यप्रदेश हाईकोर्ट की मुख्य न्यायाधीश अल्पेश यशवंत कोगजे और न्यायमूर्ति विवेक जैन की खंडपीठ ने नोटिस जारी कर राज्य सरकार से जवाब मांगा है और कलेक्टर को लंबित आवेदन पर निर्णय लेने के निर्देश दिए हैं। अब कलेक्टर कार्यालय में फाइल खोजी जाएगी कि आवेदन कहां रखा है। संभव है, वह किसी अलमारी में चाय के दाग के नीचे दबा हो।

आजकल हर चीज में कॉम्बो का चलन है। शॉपिंग मॉल में एक ही छत के नीचे सिनेमा और खाना मिलता है, तो जबलपुर में एक ही छत के नीचे शिक्षा और नशा भी उपलब्ध है। सुबह बच्चा ज्ञान लेने आए और शाम को पिता तनाव भगाने। परिवार का पूरा पैकेज एक ही जगह! सरकार को इस मॉडल का विस्तार करने पर विचार करना चाहिए, क्योंकि शिक्षा से राजस्व नहीं आता, लेकिन शराब से खूब आता है। राजस्व का यह प्रेम भी समझ में आता है।

हाईकोर्ट का सवाल केवल जबलपुर का नहीं, पूरे सिस्टम का है। क्या हमारी नीतियां इतनी कमजोर हैं कि एक दीवार के इस पार स्कूल और उस पार शराब की दुकान को चलने दिया जाए? क्या अधिकारी आंखों देखी अनदेखी करते रहेंगे? क्या हम बच्चों के भविष्य के बगल में नशे की दुकान देखकर भी चुप रहेंगे? जबलपुर की इस घटना ने नीतियों की खामियों और विभागों की लापरवाही को उजागर कर दिया है। अब देखना है कि सरकार क्या जवाब देती है। क्या वह गलती स्वीकार करेगी या कोई नया नियम निकालकर कहेगी कि एक ही परिसर में शाला और मधुशाला से संस्कार और साक्षरता, दोनों मिल रहे हैं?

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)